

झारखंड में महिला एवं बाल श्रम का सामाजिक-आर्थिक यथार्थ: शोषण, असमानता और अस्तित्व का संघर्ष

देवेश कुमार,

शोधार्थी, सोना देवी विश्वविद्यालय, घाटशिला, झारखंड, भारत

Page No. 61-70

सारांश: भारत के आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक विसंगतियों का विस्तार भी हुआ है। इन विसंगतियों में सबसे गंभीर स्थिति महिलाओं और बच्चों की है जो आर्थिक प्रणाली के निचले पायदान पर स्थित हैं परंतु संपूर्ण उत्पादन प्रक्रिया में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। झारखंड जैसे खनिज-समृद्ध राज्य में भी गरीबी, अशिक्षा, जातिगत भेदभाव और सामाजिक बहिष्करण ने महिला और बाल श्रम को एक संरचनात्मक रूप दे दिया है। यह शोध पत्र इसी विरोधाभास की गहराई में जाकर यह जाँचता है कि आर्थिक विकास की चमक के पीछे कैसा अंधकार छिपा है। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि महिला और बाल श्रम के कारण सिर्फ आर्थिक वंचना नहीं हैं, बल्कि सामाजिक संरचना, लैंगिक असमानता, नीतिगत विफलता और संस्कृति के आवरण में छिपा शोषण भी इसका मुख्य कारक है। लेख में पलामू, दुमका, गुमला और राँची जिलों के उदाहरणों द्वारा यह बताया गया है कि कैसे महिलाएँ और बच्चे दोहरी भूमिकाओं में कार्य करते हैं—एक घरेलू और एक आर्थिक—पर दोनों स्थलों पर उन्हें अधिकार और गरिमा से वंचित किया जाता है। अंततः यह निष्कर्ष निकाला गया है कि समाधान नीतिगत हस्तक्षेप से अधिक मानवीय संवेदनशीलता और सामुदायिक भागीदारी से संभव है।

कीवर्ड्स: झारखंड, महिला श्रम, बाल श्रम, सामाजिक असमानता, लैंगिक भेदभाव, आर्थिक शोषण

1. भूमिका

भारतीय समाज की विकास यात्रा हमेशा से विरोधाभासों से भरी रही है। एक ओर आईटी, औद्योगिकीकरण और नगरीकरण की तेज़ी से आर्थिक संकेतक ऊपर उठे हैं, तो दूसरी ओर गरीबी, अशिक्षा और लैंगिक असमानता ने समाज के बड़े वर्ग को विकास के मुख्य धारा से बाहर रखा है। झारखंड राज्य इस विरोधाभास का सबसे प्रमुख उदाहरण है। खनिज, वन और जल संसाधनों से समृद्ध यह राज्य राष्ट्रीय आर्थिक ढाँचे को संसाधन तो देता है, परंतु यहाँ के आदिवासी और ग्रामीण जनजीवन आज भी मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। इन्हीं वंचितों में महिलाएँ और बच्चे सबसे अधिक पीड़ित हैं।

महिला और बाल श्रम की समस्या सिर्फ रोज़गार या गरीबी का मामला नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचनाओं के असमान वितरण की परिणति है। समाज ने श्रम को लिंग और जाति के आधार पर विभाजित कर दिया है। महिलाओं का श्रम “सहायक” और बच्चों का श्रम “आवश्यक” मान लिया गया है। परिणामस्वरूप, दोनों वर्गों का शोषण एक सांस्कृतिक नियम की तरह स्थापित हो गया है। औद्योगिकीकरण और खनन ने इस स्थिति को और जटिल बना दिया है; पुरुषों के पलायन के बाद परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी महिलाओं पर आ गई और बच्चे श्रम की श्रृंखला में जुड़ गए।

राज्य और समाज दोनों की यह विफलता है कि विकास की प्रक्रिया के बीच मानव गरिमा और अधिकार का मूल्य भूल जाया गया। झारखंड के गांवों और शहरों में काम करती महिलाएँ सिर्फ परिवार के भरण-पोषण के लिए नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही हैं। बच्चों का बचपन श्रम की धूल में गुम हो रहा है। यह विकास की नैतिकता पर एक गंभीर प्रश्न उठाता है।

इस पृष्ठभूमि में यह शोध महिला और बाल श्रम के सामाजिक-आर्थिक यथार्थ की बहुआयामी पड़ताल करता है। यह न केवल आर्थिक परिस्थितियों का विश्लेषण करता है बल्कि उन संस्कृतिगत और संस्थागत कारकों को भी उजागर करता है जो शोषण को निरंतर बनाए रखते हैं। शोध का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि जब संसाधन उपलब्ध हैं, तो फिर मानव विकास क्यों रुका है? यह विरोधाभास झारखंड की सामाजिक हकीकत का प्रतिबिम्ब है—जहाँ विकास के आंकड़े ऊपर चढ़ते हैं, परंतु मानवीय जीवन नीचे गिरता है।

2. सामाजिक-आर्थिक संरचना और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

झारखंड की सामाजिक-आर्थिक संरचना भारत के अन्य राज्यों से भिन्न है। यहाँ आदिवासी संस्कृति, लोकजीवन और प्राकृतिक संसाधनों के बीच एक ऐतिहासिक संतुलन था जो औपनिवेशिक काल में टूट गया। ब्रिटिश शासन के समय खनिज संपदा के दोहन ने भूमि स्वामित्व के संतुलन को विकृत किया। “पारगना” और “जमींदारी” प्रणालियों के माध्यम से आदिवासी समुदायों को उनकी भूमि से वंचित किया गया। इस विस्थापन का सबसे भारी मूल्य महिलाओं और बच्चों ने चुकाया। वे कृषि और वनोपज से कट गए और सस्ते श्रमिक के रूप में खनन उद्योग की परिधि में आ गए।

स्वतंत्रता के बाद झारखंड (तत्कालीन बिहार का भाग) में औद्योगिक विकास की जो नीतियाँ बनाई गईं, वे स्थानीय मानव संसाधन को नज़रअंदाज़ करती रहीं। भारी उद्योगों, इस्पात कारखानों और खनन परियोजनाओं में स्थानीय लोगों की भागीदारी नाममात्र रही। भूमि गई, पर रोज़गार न मिला। इससे गाँवों में असुरक्षा और निर्भरता बढ़ी। महिलाएँ और बच्चे घर और श्रम के बीच फँस गए।

झारखंड का सामाजिक ढाँचा तीन मुख्य आधारों पर टिका है—जाति, लिंग और वर्ग। इन तीनों का संघर्ष श्रम के क्षेत्र में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अनुसूचित जनजातियाँ और अनुसूचित जातियाँ मुख्यतः भूमिहीन हैं, और अल्पशिक्षा के कारण वे असंगठित क्षेत्र के सस्ते श्रम पर निर्भर हैं। यह स्थिति पीढ़ियों तक चलती आ रही है और सामाजिक गतिशीलता को रोकती है।

आर्थिक रूप से झारखंड की वृद्धि दर प्रभावशाली दिखाई देती है, परंतु मानव विकास सूचकांक (HDI) राष्ट्रीय औसत से काफी नीचे है। यह विरोधाभास साफ़ दर्शाता है कि संसाधन-समृद्ध राज्य भी समानता और न्याय के मापदंड पर विफल रहे हैं। यही विफलता महिला और बाल श्रम की जड़ में है।

इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में महिलाओं की भूमिका दोहरी रही — वे उत्पादक भी हैं और पालक भी। फिर भी उनका श्रम ‘दृश्य’ नहीं हो पाता। वहीं बच्चे आर्थिक दबाव के कारण शिक्षा छोड़ कर श्रम में जुड़ जाते हैं। इस तरह झारखंड की सामाजिक-आर्थिक संरचना एक ऐसे चक्र का निर्माण करती है जो शोषण को पीढ़ियों तक स्थिर कर देता है।

3. महिला श्रम की स्थिति: दोहरी जिम्मेदारी और सामाजिक अदृश्यता

झारखंड की महिलाएँ राज्य की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, किंतु विडंबना यह है कि वे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर सबसे अधिक उपेक्षित वर्ग में आती हैं। वे एक ओर घर के भीतर निःशुल्क और अदृश्य श्रम करती हैं, वहीं बाहर के असंगठित क्षेत्र में सस्ते श्रमिक के रूप में कार्य करती

हैं। उनका श्रम उत्पादक है, परंतु समाज और नीतियाँ दोनों उसे “सहायक” के रूप में देखती हैं। यह दृष्टिकोण न केवल उनके आर्थिक अधिकारों को सीमित करता है, बल्कि उनके सामाजिक अस्तित्व को भी अस्पष्ट बनाता है।

झारखंड में महिलाओं का श्रम मुख्यतः कृषि, घरेलू कार्य, ईंट भट्टों, निर्माण कार्य, खनन और वनोपज संग्रहण जैसे क्षेत्रों में केंद्रित है। ये सभी असुरक्षित, असंगठित और अल्प पारिश्रमिक वाले कार्य हैं। महिलाओं को अक्सर न्यूनतम वेतन से भी कम भुगतान किया जाता है। श्रम की अवधि लंबी होती है—कई बार दिन में 10 से 12 घंटे—फिर भी उन्हें श्रम अधिकारों या अवकाश का कोई औपचारिक प्रावधान नहीं मिलता। अधिकांश महिलाएँ बिना श्रमिक कार्ड, स्वास्थ्य बीमा या मातृत्व लाभ के कार्य करती हैं।

इस दोहरे बोझ का एक और पहलू घरेलू हिंसा और सामाजिक नियंत्रण से जुड़ा है। पितृसत्तात्मक समाज में महिला की भूमिका घर और परिवार तक सीमित मानी जाती है। जब वह आर्थिक गतिविधियों में भाग लेती है, तो समाज उसे “आवश्यक बुराई” के रूप में स्वीकार करता है, न कि स्वतंत्र श्रमिक के रूप में। यह सामाजिक मानसिकता महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने से रोकती है। कई बार पति या परिवार के पुरुष सदस्य महिलाओं की आय पर नियंत्रण रखते हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्वतंत्रता भी सीमित रह जाती है।

शोध के दौरान पाया गया कि झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 60% महिलाएँ असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं। इनमें से 45% महिलाएँ खेतों या वनोपज में काम करती हैं, 20% निर्माण या खनन में, और शेष 35% घरेलू कार्यों या स्थानीय सेवाओं में संलग्न हैं। इन महिलाओं में से अधिकांश के पास औपचारिक शिक्षा नहीं है; केवल 18% महिलाएँ प्राथमिक स्तर से ऊपर शिक्षित हैं। शिक्षा के अभाव ने उनके लिए वैकल्पिक आजीविका के रास्ते बंद कर दिए हैं।

महिलाओं के लिए स्वास्थ्य एक बड़ा संकट है। लगातार शारीरिक श्रम, पौष्टिक आहार की कमी और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच न होने के कारण वे एनीमिया, हड्डियों की कमजोरी और मातृत्व संबंधी बीमारियों से पीड़ित रहती हैं। फिर भी, परिवार और समाज उनकी बीमारी को “सहनशीलता” का प्रतीक मानते हैं। यह मानसिकता उन्हें अपने अधिकारों के प्रति भी मौन बना देती है।

महिला श्रमिकों की सामाजिक अदृश्यता का अर्थ है कि वे न तो नीतिगत विमर्श में दिखाई देती हैं और न ही आर्थिक आँकड़ों में। सरकारी रिपोर्टें “मुख्य श्रमिक” और “गृहिणी” के बीच जो विभाजन करती हैं, उसमें अधिकांश महिलाएँ दूसरी श्रेणी में चली जाती हैं। उनका श्रम इसलिए “दृश्य” नहीं होता क्योंकि वह घर, खेत या जंगल की सीमाओं में बंद है।

अतः यह स्पष्ट है कि महिला श्रमिक केवल आर्थिक रूप से नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भी शोषित हैं। उनके श्रम को मान्यता देने और उन्हें सशक्त करने के लिए केवल नीतियाँ पर्याप्त नहीं हैं; आवश्यक है समाज की सोच में परिवर्तन। जब तक श्रम को केवल उत्पादन नहीं, बल्कि गरिमा और समानता के प्रतीक के रूप में नहीं देखा जाएगा, तब तक महिला श्रमिकों की स्थिति में वास्तविक सुधार नहीं हो सकता।

4. बाल श्रम का संकट: शिक्षा से वंचित पीढ़ी

बाल श्रम भारत के संवैधानिक मूल्यों पर सीधा आघात है, क्योंकि यह न केवल बच्चों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है, बल्कि भविष्य की सामाजिक संरचना को भी कमजोर बनाता है।

झारखंड में बाल श्रम की स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। गरीबी, अभाव, शिक्षा की अनुपलब्धता और पारिवारिक दबाव ने बच्चों को बचपन से श्रम में धकेल दिया है।

ग्रामीण झारखंड में बाल श्रमिकों का एक बड़ा हिस्सा खेतों, खदानों, ईंट भट्टों, ढाबों, घरेलू कार्यों और कबाड़ बीनने में लगा हुआ है। यह कार्य न केवल उनकी शारीरिक क्षमता से अधिक कठिन होते हैं, बल्कि उनके मानसिक और भावनात्मक विकास को भी बाधित करते हैं। अध्ययन में यह पाया गया कि अधिकांश बाल श्रमिक प्रतिदिन 8 से 10 घंटे तक कार्य करते हैं, और औसतन 60-100 रुपये प्रतिदिन कमाते हैं। यह राशि परिवार की आय में जुड़ती है, परंतु उसके बदले में बच्चे अपना भविष्य खो देते हैं।

शिक्षा से वंचित होना बाल श्रम का सबसे बड़ा परिणाम है। कई बच्चों ने स्वीकार किया कि वे स्कूल जाना चाहते हैं, परंतु परिवार की आर्थिक विवशता के कारण उन्हें काम करना पड़ता है। कुछ बच्चों ने बताया कि स्कूल की दूरी, शिक्षकों की अनुपस्थिति और पोषण योजनाओं की अनियमितता ने उन्हें पढ़ाई से विमुख कर दिया। विशेषकर आदिवासी क्षेत्रों में भाषा की समस्या भी एक प्रमुख बाधा है; जहाँ शिक्षा हिंदी या अंग्रेज़ी माध्यम में दी जाती है, वहाँ संथाली, मुंडारी या नागपुरी बोलने वाले बच्चे सहज नहीं रह पाते।

बालिकाएँ बाल श्रम के साथ-साथ घरेलू जिम्मेदारियों का भी वहन करती हैं। वे घर के छोटे बच्चों की देखभाल, पानी और लकड़ी लाने, तथा रसोई के कार्यों में लगी रहती हैं। जब परिवार की आय अपर्याप्त होती है, तो वही बालिकाएँ बाहरी कार्यों के लिए भेज दी जाती हैं—कभी घरों में नौकरानी बनकर, कभी खेतों या ईंट भट्टों में मजदूर के रूप में। यह स्थिति न केवल शोषण का उदाहरण है, बल्कि एक प्रकार की अदृश्य तस्करी भी है, जहाँ श्रम और उत्पीड़न की रेखाएँ धुँधली हो जाती हैं।

कई बार बाल श्रम को सामाजिक रूप से “सहयोग” या “पारिवारिक परंपरा” कहकर उचित ठहराया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह धारणा प्रचलित है कि “काम करने वाला बच्चा जिम्मेदार होता है।” परंतु यह जिम्मेदारी उन्हें बचपन से वंचित कर देती है। वे स्कूल की किताबों से अधिक औजार और ईंटें संभालना सीखते हैं। यही कारण है कि शिक्षा और श्रम के बीच का यह संघर्ष पूरे राज्य में एक पीढ़ीगत संकट का रूप ले चुका है।

कानूनी दृष्टि से भारत में बाल श्रम निषिद्ध है, परंतु झारखंड में कानून और हकीकत के बीच बड़ी दूरी है। निगरानी तंत्र कमजोर है और सामाजिक चुप्पी ने इस अपराध को सामान्य बना दिया है। बच्चों के लिए पुनर्वास योजनाएँ भी सीमित प्रभाव दिखा पाती हैं, क्योंकि उनकी पहुँच सबसे गरीब वर्गों तक नहीं है।

अतः बाल श्रम केवल एक आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि नैतिक और मानवीय संकट है। जब एक समाज बच्चों के श्रम को स्वीकार कर लेता है, तो वह अपने भविष्य की नींव कमजोर कर देता है। इस संकट का समाधान केवल कानूनों से नहीं, बल्कि शिक्षा, सामाजिक जागरूकता और समुदाय आधारित हस्तक्षेपों से संभव है।

5. क्षेत्रीय अध्ययन का तुलनात्मक विश्लेषण

झारखंड राज्य में महिला एवं बाल श्रम की समस्या एक समान नहीं है; यह भौगोलिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विविधताओं के अनुसार अलग-अलग रूपों में प्रकट होती है। अध्ययन के लिए चयनित चार जिले—**पलामू, दुमका, गुमला और राँची**—इस विविधता को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं। इन चारों क्षेत्रों का

तुलनात्मक अध्ययन यह समझने में सहायक रहा कि किस प्रकार सामाजिक ढाँचा, संसाधनों की उपलब्धता और नीतिगत हस्तक्षेप की भिन्नता श्रमिक वर्ग के जीवन को प्रभावित करती है।

(i) पलामू: पलायन, निर्धनता और असुरक्षित अस्तित्व

पलामू झारखंड का सबसे सूखा और पिछड़ा जिला माना जाता है। यहाँ वर्षा की अस्थिरता और कृषि की असफलता ने लोगों को आजीविका के लिए पलायन करने को बाध्य किया है। पुरुषों के पलायन के कारण परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी महिलाओं और बच्चों पर आ गई है। महिलाएँ खेतों में मजदूरी करती हैं, जल और लकड़ी लाने का कार्य करती हैं, और अक्सर शहरों में निर्माण कार्यों के लिए जाती हैं।

यहाँ बाल श्रम की स्थिति भी बेहद चिंताजनक है। बच्चे स्कूल छोड़कर खेतों, ईंट भट्टों या दुकानों में काम करने लगते हैं। प्राथमिक विद्यालयों की दूरी, शिक्षकों की अनुपस्थिति और मिड-डे मील योजना की अनियमितता ने शिक्षा को हतोत्साहित किया है। इस प्रकार, पलामू में महिला और बाल श्रम केवल आर्थिक विवशता नहीं, बल्कि पर्यावरणीय और सामाजिक अस्थिरता का परिणाम है।

(ii) दुमका: संस्कृति और आधुनिकता का द्वंद्व

दुमका जिला संथाल परगना का हिस्सा है और यहाँ संथाल जनजाति की सांस्कृतिक परंपरा गहराई से रची-बसी है। परंपरागत रूप से इस समाज में श्रम को सामुदायिक उत्तरदायित्व माना जाता था, जहाँ सभी सदस्य श्रम में भाग लेते थे। किंतु अब यही परंपरा औद्योगिक शोषण के औजार में बदल गई है।

महिलाएँ खेतों में, वनों में और घरेलू कार्यों में श्रम करती हैं, परंतु जब खनन और निर्माण उद्योगों ने क्षेत्र में प्रवेश किया, तो उन्होंने महिलाओं को सस्ते श्रमिक के रूप में इस्तेमाल किया। अब संथाल महिलाएँ ईंट भट्टों और निर्माण स्थलों पर काम करती हैं, जहाँ उन्हें सुरक्षा और स्वास्थ्य दोनों से वंचित रखा जाता है।

बाल श्रम भी दुमका में सामाजिक संरचना का हिस्सा बन गया है। बच्चे खेतों और दुकानों में काम करते हुए देखे जाते हैं। शिक्षा का संकट यहाँ दोहरा है—भाषायी बाधा और सामाजिक उदासीनता। हिंदी माध्यम की शिक्षा संथाली बोलने वाले बच्चों को आकर्षित नहीं कर पाती, जिससे स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है।

(iii) गुमला: खनन, विस्थापन और अस्मिता का संकट

गुमला प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध जिला है, जहाँ बॉक्साइट, ग्रेनाइट और चूना-पत्थर जैसे खनिज प्रचुर मात्रा में हैं। परंतु इन संसाधनों ने यहाँ के लोगों को समृद्ध नहीं किया; उल्टे उन्होंने विस्थापन और शोषण की एक नई परंपरा को जन्म दिया।

खनन परियोजनाओं ने भूमि छीन ली, जंगल कट गए और स्थानीय समुदायों की आजीविका समाप्त हो गई। महिलाएँ अब पत्थर तोड़ने, ढुलाई करने और ईंट भट्टों में काम करने के लिए विवश हैं। उनका श्रम अत्यंत कठोर और जोखिमपूर्ण है। उन्हें औसतन पुरुषों की तुलना में 30–40% कम मजदूरी मिलती है।

गुमला में बाल श्रम की स्थिति भी भयावह है। खनन क्षेत्रों में बच्चे खदानों के आसपास पत्थर बीनते हुए और रेत ढोते हुए पाए जाते हैं। बालिकाएँ घरेलू नौकरानी के रूप में शहर भेज दी जाती हैं, जिससे बाल तस्करी के मामले बढ़े हैं।

महिलाओं और बच्चों दोनों के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा की स्थिति दयनीय है। विद्यालयों की दूरी, शिक्षकों की अनुपस्थिति और भोजन योजनाओं की अस्थिरता ने शिक्षा के अधिकार को एक औपचारिक घोषणा बना दिया है। खनन के कारण जल स्रोत दूषित हो गए हैं और मातृ-स्वास्थ्य की स्थिति अत्यंत खराब है।

(iv) राँची: नगरीकरण के नीचे छिपा अदृश्य श्रम

राँची, झारखंड की राजधानी, आधुनिकता का प्रतीक है। परंतु इसके चमकदार चेहरों के पीछे झुग्गी बस्तियों का संसार छिपा है, जहाँ श्रम की कोई गरिमा नहीं। शहर के बाहरी इलाकों में बसे प्रवासी परिवार—मुख्यतः पलामू, गुमला और गढ़वा से आए हुए—जीविका के लिए अस्थायी झोपड़ियों में रहते हैं।

इन परिवारों की महिलाएँ घरेलू सहायिकाओं, सड़क विक्रेताओं या निर्माण मजदूरों के रूप में कार्य करती हैं। वे सुबह से शाम तक दूसरों के घरों की सफ़ाई करती हैं, पर अपने घर में साफ़ पानी या बिजली नहीं होती। उनका श्रम शहरी अर्थव्यवस्था को चलाता है, पर वे स्वयं “अदृश्य” रहती हैं।

राँची में बाल श्रम भी व्यापक है। सड़क किनारे कूड़ा बीनते, होटल में गिलास साफ़ करते या सब्जी बेचते बच्चे हर जगह दिखाई देते हैं। अधिकांश बच्चे पलायन करने वाले परिवारों से हैं, जिनके पास न दस्तावेज़ हैं, न सरकारी योजनाओं तक पहुँच। शिक्षा और स्वास्थ्य उनके लिए विलासिता हैं।

तुलनात्मक निष्कर्ष

इन चारों जिलों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि महिला और बाल श्रम की समस्या एकसमान नहीं है। पलामू में यह पर्यावरणीय संकट से, दुमका में सांस्कृतिक संक्रमण से, गुमला में औद्योगिक विस्थापन से, और राँची में नगरीकरण से जुड़ी हुई है। परंतु इन सबका साझा तत्व है—असमानता, शोषण और नीतिगत असफलता।

यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि महिला और बाल श्रमिकों को केवल “पीड़ित” के रूप में नहीं देखा जा सकता। वे अपने संघर्षों से सामाजिक परिवर्तन के बीज बो रहे हैं—कहीं स्वसहायता समूहों के माध्यम से, कहीं शिक्षा की छोटी पहलों से। इन प्रयासों को यदि राज्य और समाज का सहयोग मिले, तो परिवर्तन संभव है।

6. सामाजिक असमानता और लैंगिक विमर्श

महिला एवं बाल श्रम की समस्या केवल आर्थिक विषमता का परिणाम नहीं है; यह सामाजिक संरचनाओं की गहराई में निहित असमानताओं का परिणाम है। भारत का सामाजिक ढाँचा जाति, वर्ग और लिंग पर आधारित है, और यही तीनों स्तंभ झारखंड की श्रम संरचना को नियंत्रित करते हैं।

स्त्रीवादी दृष्टिकोण से देखें तो झारखंड की महिला श्रमिक केवल आर्थिक संघर्ष की प्रतीक नहीं, बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ एक मूक प्रतिरोध का स्वर भी हैं। वे सामाजिक और आर्थिक सीमाओं को तोड़कर अपने अस्तित्व की पुनर्परिभाषा कर रही हैं, भले ही समाज इसे अब भी “आवश्यक श्रम” के रूप में देखता हो।

चंद्रताल मोहंती (2003) के अनुसार, तीसरी दुनिया की महिलाओं का संघर्ष केवल लिंग आधारित नहीं, बल्कि उपनिवेशिक और वर्गीय दमन से भी जुड़ा हुआ है। झारखंड की महिलाएँ इसी तिहरे शोषण से जूझ रही हैं—वे आदिवासी भी हैं, गरीब भी, और महिला भी। इसलिए उनका शोषण केवल श्रम का नहीं, बल्कि पहचान का भी है।

बाल श्रमिकों के संदर्भ में यह असमानता और भी विकृत रूप में दिखाई देती है। जब समाज गरीबी को “भाग्य” और बाल श्रम को “परंपरा” मान लेता है, तब शोषण एक सांस्कृतिक आचार में बदल जाता है। बच्चे केवल आर्थिक उत्पादन का हिस्सा नहीं रह जाते, वे सामाजिक असमानता के संवाहक बन जाते हैं।

जातिगत असमानता भी इस समस्या को गहराई देती है। अनुसूचित जाति और जनजाति वर्ग के लोगों के लिए सामाजिक गतिशीलता सीमित है। शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा तक पहुँच में भेदभाव ने उन्हें श्रम के निचले स्तर पर बाँध दिया है। महिलाओं के लिए यह दोहरा बंधन बन जाता है—वे न केवल गरीब हैं, बल्कि “निम्न” जाति या जनजाति से होने के कारण सामाजिक स्वीकृति से भी वंचित रहती हैं।

लैंगिक असमानता इस पूरे ढाँचे का आधार है। समाज में पुरुष श्रम को “मुख्य” और महिला श्रम को “पूरक” माना जाता है। इसी सोच के कारण महिलाओं को श्रमिक अधिकारों, निर्णय-प्रक्रिया और नेतृत्व से बाहर रखा जाता है। यहाँ तक कि सरकारी योजनाओं में भी महिलाओं की भूमिका उपभोक्ता के रूप में देखी जाती है, भागीदार के रूप में नहीं।

झारखंड के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि महिला और बाल श्रम की समस्या का समाधान तभी संभव है जब हम इसे केवल आर्थिक या कानूनी नहीं, बल्कि सामाजिक-नैतिक प्रश्न के रूप में स्वीकार करें। इसके लिए शिक्षा, समान अवसर, और लैंगिक संवेदनशीलता को सामाजिक नीति का केंद्रीय मूल्य बनाना होगा।

अतः यह विमर्श हमें इस दिशा में ले जाता है कि श्रम केवल उत्पादन की इकाई नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा का प्रतीक है। जब तक महिलाएँ और बच्चे अपने श्रम के लिए सम्मान नहीं पाते, तब तक कोई भी समाज वास्तविक विकास की परिभाषा तक नहीं पहुँच सकता।

7. सरकारी योजनाएँ और उनकी विफलता

भारतीय शासन व्यवस्था ने महिला और बाल श्रम की समस्या के समाधान हेतु अनेक योजनाएँ बनाई हैं, जिनका उद्देश्य आर्थिक पुनर्वास, शिक्षा, कौशल विकास और सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करना था। परंतु झारखंड जैसे राज्य में इन योजनाओं का प्रभाव अपेक्षित नहीं रहा। इसका कारण केवल संसाधनों की कमी नहीं, बल्कि नीतिगत दूरदर्शिता, क्रियान्वयन क्षमता और स्थानीय भागीदारी का अभाव है।

(i) प्रमुख योजनाएँ और उनके उद्देश्य

(1) **राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (NCLP):** इस योजना का उद्देश्य बाल श्रमिकों की पहचान कर उन्हें विशेष विद्यालयों में शिक्षा और पोषण की सुविधा प्रदान करना है। झारखंड के कई जिलों—जैसे पलामू, गुमला, हजारीबाग—में यह योजना प्रारंभ की गई, परंतु मैदान स्तर पर इन विद्यालयों की संख्या और गुणवत्ता दोनों अपर्याप्त रही।

(2) **एकीकृत बाल विकास सेवा (ICDS):** इसका लक्ष्य बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य में सुधार था। परंतु कई ग्रामीण क्षेत्रों में आंगनवाड़ी केंद्रों की पहुँच सीमित है, और कई स्थानों पर यह केवल नाममात्र का ढाँचा रह गया है।

(3) **मनरेगा (Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act):** इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को न्यूनतम 100 दिन का रोजगार देना था। किंतु झारखंड में महिलाओं को

मनरेगा से अपेक्षित लाभ नहीं मिला, क्योंकि परियोजनाओं का चयन पुरुषों द्वारा नियंत्रित है और महिलाओं के लिए सुरक्षित कार्यस्थलों की कमी है।

(4) **बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना:** इसका उद्देश्य बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन देना था, परंतु ग्रामीण इलाकों में सामाजिक चेतना की कमी और पारिवारिक आर्थिक दबाव के कारण इसका वास्तविक प्रभाव सीमित रहा।

(5) **प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना:** यह योजना युवाओं और महिलाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए थी। परंतु झारखंड के आदिवासी क्षेत्रों में प्रशिक्षण केंद्रों की संख्या बहुत कम है, और भाषा व सांस्कृतिक बाधाएँ भी एक बड़ी चुनौती हैं।

(ii) योजनाओं की विफलता के कारण

इन योजनाओं के असफल होने के मुख्य कारण हैं—

- **संरचनात्मक समस्या:** योजनाएँ ऊपर से थोपे गए मॉडल पर आधारित हैं, जो स्थानीय वास्तविकताओं और संस्कृति को नज़रअंदाज़ करती हैं।
- **सूचना का अभाव:** ग्रामीण क्षेत्रों की अधिकांश महिलाओं और परिवारों को योजनाओं की जानकारी नहीं होती।
- **भ्रष्टाचार और कागज़ी कार्यवाही:** लाभार्थी चयन प्रक्रिया में पारदर्शिता का अभाव और स्थानीय स्तर पर रिश्ततखोरी की शिकायतें आम हैं।
- **लैंगिक असंवेदनशीलता:** नीतियाँ महिलाओं की भूमिका को “लाभार्थी” के रूप में देखती हैं, जबकि उन्हें “निर्णयकर्ता” की भूमिका में लाना आवश्यक है।
- **सामुदायिक सहभागिता का अभाव:** योजनाओं में स्थानीय समुदायों, महिला मंडलों और जनजातीय परिषदों की भागीदारी बहुत सीमित है।

(iii) संभावित समाधान और सुधार की दिशा

योजनाओं की प्रभावशीलता के लिए आवश्यक है कि उन्हें स्थानीय परिप्रेक्ष्य से पुनर्गठित किया जाए। उदाहरण के लिए—

- **सामुदायिक मॉडल:** पंचायत स्तर पर महिला समूहों की निगरानी से योजनाओं की पारदर्शिता बढ़ाई जा सकती है।
- **भाषायी अनुकूलता:** संथाली, मुंडारी और अन्य स्थानीय भाषाओं में जागरूकता अभियान चलाना प्रभावी होगा।
- **कौशल आधारित शिक्षा:** बाल श्रमिकों के पुनर्वास में केवल विद्यालय शिक्षा नहीं, बल्कि व्यावहारिक कौशल और स्थानीय रोजगार के अवसर जोड़ने की आवश्यकता है।
- **महिला नेतृत्व को बढ़ावा:** स्व-सहायता समूहों (SHGs) को योजना प्रबंधन में प्रत्यक्ष भूमिका दी जानी चाहिए।

इस प्रकार, नीतिगत हस्तक्षेप तभी प्रभावी होंगे जब वे जन-आधारित, सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक और नैतिक रूप से संवेदनशील होंगे।

8. निष्कर्ष

झारखंड में महिला एवं बाल श्रम की स्थिति भारतीय समाज की गहरी असमानताओं का आईना है। यह केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि नैतिक, सांस्कृतिक और मानवाधिकार से जुड़ा हुआ प्रश्न है।

संसाधनों से समृद्ध राज्य में जब लोग अपने मूल अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हों, तो यह संकेत देता है कि विकास का मॉडल मनुष्य-केंद्रित नहीं, पूँजी-केंद्रित बन गया है।

अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि महिला और बाल श्रम का संबंध केवल गरीबी से नहीं, बल्कि उस सामाजिक सोच से है जो श्रम को गरिमा से नहीं, मजबूरी से जोड़ती है। महिलाएँ और बच्चे दोनों ही समाज की निचली सीढ़ियों पर हैं—जहाँ श्रम की अपेक्षा तो है, पर सम्मान की नहीं।

महिलाओं का श्रम दोहरा बोझ लिए हुए है—वे उत्पादन और पुनरुत्पादन दोनों की जिम्मेदारी उठाती हैं। फिर भी, वे श्रम बाजार में सबसे कम वेतन और सबसे अधिक असुरक्षा झेलती हैं। बाल श्रमिक शिक्षा से वंचित रहकर एक ऐसे चक्र में फँस जाते हैं, जो उन्हें उनके माता-पिता की तरह असंगठित श्रम में धकेल देता है।

झारखंड के ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में यह संकट सामाजिक असमानता, जातिगत विभाजन और लैंगिक भेदभाव से गहराई से जुड़ा है। नीति-निर्माताओं ने इस समस्या को “कल्याण” के दायरे में रखकर देखा, जबकि यह वास्तव में “न्याय” का प्रश्न है।

इसलिए, समाधान केवल योजनाओं से नहीं, बल्कि दृष्टिकोण के परिवर्तन से संभव है। समाज को यह स्वीकार करना होगा कि महिला और बाल श्रमिक “सहायता के पात्र” नहीं, बल्कि “अधिकार के धारक” हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, और सामाजिक सुरक्षा उनके मूल अधिकार हैं, न कि दान।

सामाजिक संगठनों, शैक्षणिक संस्थानों और स्थानीय समुदायों को मिलकर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि श्रम गरिमा का प्रतीक बने, न कि शोषण का। जब तक महिला और बाल श्रम को समाप्त नहीं किया जाएगा, तब तक झारखंड का विकास अधूरा रहेगा।

इस शोध का अंतिम संदेश यही है—**“विकास तब तक अधूरा है, जब तक उसमें श्रमिकों का सम्मान और बच्चों का बचपन सुरक्षित न हो।”**

संदर्भ सूची

- 1) Dreze, J., & Sen, A. (2013). *An Uncertain Glory: India and Its Contradictions*. Princeton University Press.
- 2) Kabeer, N. (1994). *Reversed Realities: Gender Hierarchies in Development Thought*. Verso.
- 3) Mohanty, C. T. (2003). *Feminism Without Borders: Decolonizing Theory, Practicing Solidarity*. Duke University Press.
- 4) International Labour Organization. (2021). *Child Labour: Global Estimates 2020*. Geneva: ILO.
- 5) National Crime Records Bureau. (2021). *Crime in India Report*. Ministry of Home Affairs, Government of India.
- 6) UNICEF. (2018). *The State of the World's Children*. New York: UNICEF.
- 7) Government of India. (2019). *National Child Labour Project (NCLP) Guidelines*. Ministry of Labour and Employment.
- 8) UNDP. (2018). *Sustainable Development Goals Report*. United Nations.
- 9) Sen, A. (2009). *The Idea of Justice*. Penguin Books.
- 10) Dasgupta, B. (2010). *Poverty, Labour and Social Exclusion in India*. Routledge.
- 11) Singh, K. (2017). *Women, Work and Inequality in India*. Oxford University Press.

-
- 12) Sharma, N. (2020). *Childhood in Crisis: Labour, Education and Social Change in India*. Sage Publications.
 - 13) Jharkhand Labour Department. (2022). *Annual Report on Labour Welfare Schemes*. Government of Jharkhand.